॥ हरिः ॐ ॥

# प्रसन्नता

पूज्य श्रीमोटा

# पूज्य श्रीमोटा की
# पावन वाणी
# एवं साहित्य में से
# 'प्रसन्नता'
# विषयक संकलन

॥ हरिः ॐ ॥

# प्रसन्नता

पूज्य श्रीमोटा

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

♦ **प्रकाशक**
(श्रीमोटा), हरि:ॐ आश्रम,
कुरुक्षेत्र महादेव मंदिर के पास, जहाँगीरपुरा, सूरत-३९५००५
भ्रमणभाष : +९१ ९७२७७ ३३४००
E-mail : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

♦ **आवृत्ति:** प्रथम **वर्ष :** २०२१ **प्रतियाँ :**
♦ **पृष्ठ :**
♦ **मूल्य :**

♦ **प्राप्तिस्थान :**
◇ हरि:ॐ आश्रम, सूरत-३९५००५
◇ हरि:ॐ आश्रम, नडियाद-कपडवंज रोड,
जूना बिलोदरा, पो. बो. नं. – ७४, नडियाद- ३८७००१
भ्रमणभाष : +९१ ७८७८० ४६२८८

♦ **अक्षरांकन :**
श्री डिझाईन
१३-९६, खटोदरा बेठी कोलोनी,
रिलायन्स मोल के सामने, एपल होस्पिटल के पास,
सुरत, उधना
७०१६०४६०९६, ९०९९०३९५४२

## प्रसन्नता का अर्थ

**स्वजन : मोटा,** आप हमें 'प्रसन्नता' शब्द के बारे में समझा रहे थे। बाकी रहा समझाइए।

**श्रीमोटा :** 'प्रसन्नता' पूरा शब्द लें तो आगे 'प्र' है – 'प्र' साथ में रखें तो उसका अर्थ अधिक होता है। 'प्रसन्नता' में जो 'ता' है, वह अलग ही है। उसके साथ जुड़ा हुआ नहीं है। कुछ भी हम कहें – एक प्रीफिक्स (आगे जुड़ा शब्द–––उपसर्ग) है और दूसरा सफिक्स (पीछे जुड़ा शब्द – प्रत्यय) है। मूल शब्द 'सत्' है। 'सत्' अर्थात् होना। अब होनेपन की सभानता हमें जब हो अर्थात् 'प्रसन्नता'। यानी कि 'हम आत्मा हैं' यह होनेपन की सभानता हमें हुई कि प्रसन्नता अपने आप मिलेगी। अथवा तो हम आत्मा की बात जाने दें तो उदा. मेरे पास इतनी पूँजी है। इसकी भी सभानता हुई, इसका भी उसे आनंद है। अथवा तो समाज में जिसका मूल्य अच्छा गिना जाय, ऐसा कुछ ठोस है, इसकी उसे सभानता हुई तो उस बात में उसे प्रसन्नता हुई। इसमें दो अक्षर 'प्र' और 'ता' इसके अर्थ को अधिक स्फोट करने के लिए रखे हैं। मूल शब्द देखें तो 'सत्' है। 'प्र' 'सन्न' 'ता' – के मूल में दो 'न' है, पर संधि के नियम अनुसार 'त्' का 'न्' होता है।

# प्रसन्नता

**स्वजन : मोटा,** प्रसन्नता के बारे में कुछ कहेंगे ?

**श्रीमोटा :** प्रसन्नता के बिना इस संसार में, काम में, व्यवहार में नहीं टिक सकते हैं । जीने के लिए प्रसन्नता आवश्यक है । प्रसन्नता प्राकृतिक गुण नहीं है । साधा हुआ गुण है । सीखने से ही आता है । प्रत्येक में यह गुण नहीं होता है । बहुत कुछ स्वभावगत होता है । प्रत्येक में 'मुझे प्रसन्नता लानी है' ऐसा होना चाहिए । ऐसी अभीप्सा होनी चाहिए । इसके बिना कुछ नहीं चलेगा । कैसे भी संयोग आएँ तब भी प्रसन्नता कम हो ऐसा नहीं है । कहीं किसी से कोई दंश ना हो । उससे ऐसी इलफीलिंग (मनदुःख) न हो । ईर्ष्या न हो । खराब न लगे – इन सबके परिणाम स्वरूप प्रसन्नता प्रकट होती है । प्रसन्नता फले-फूले और जब हमारे जीवन में प्रकट हो, तब जीवन जीने जैसा इतना सुंदर होता है कि उसे अभी बोलना व्यर्थ है । जो इस तरह जीता हो, वही जानता है । यह इतना सुंदर होता है कि अच्छे से अच्छों को आकर्षित करता है । सचमुच का स्वर्ग तो यही है कि जिसके जीवन में मात्र प्रसन्नता आठों प्रहर रहा करे । यही सहज स्वर्ग है ।

अब, एक बार हमें ऐसा लगता है कि इस प्रकार की प्रसन्नता हमें कैसे मिले ? एक तो मानो ऐसी अभीप्सा होनी चाहिए । जैसे मैं दाल, चावल, रोटी, शाक खाता हूँ वैसे यह भी आवश्यक है । इसे खाये बिना चलेगा ही नहीं । इस तरह जीवन में प्रसन्नता हो तो यह सब हुआ करेगा । बाकी कहीं कुछ रहेगा नहीं । करने जैसा होगा वह सभी होगा ही

। और जो हो, वह इतने अधिक आनंद से हो और वही आनंद दूसरों को भी स्पर्श करे अर्थात् अति उत्तम है । प्रसन्नता का गुण विकसित हो तो स्वयं भी सुखी होगा और दूसरे भी सुखी होंगे । दूसरे सौ प्रतिशत सुखी नहीं होते । इसका कारण उनके मन का प्रसन्नता की ओर झुकाव नहीं होता । संपूर्ण प्रसन्न रहना चाहिए, होना चाहिए अथवा बने रहना चाहिए । इस प्रकार की भावना उनमें बिलकुल विकसित नहीं होती है । उनका ध्येय भी इस प्रकार का नहीं है । इसलिए उन्हें चाहिए उतनी प्रसन्नता स्पर्श नहीं करती है । बाकी थोड़ी बहुत वह स्पर्श करती है । और इसलिए थोड़ा बहुत आनंद भी रहता है, पर पूर्ण रूप से नहीं । मैंने जैसे कहा वैसे जिसकी भूमिका बनी हो, उसमें ऐसी प्रसन्नता विकसित हुई होती है । उसके आंदोलन उसे स्पर्श करेंगे और स्पर्श होने पर वह भी ऐसा होता है। अब, हम मूल बात पर आयें कि प्रसन्नता किस प्रकार आयेगी और कैसे प्रकट होगी ? उसके साधन क्या हैं ? और संसार में आचरण करते हुए प्रसन्नता हमारे द्वारा किस तरह विकसित होगी ? क्योंकि हमें संसार को छोड़कर नहीं चले जाना है और दूसरे जो कोई चले जाते हैं, उनकी बातें हमें करनी नहीं है । ऐसे लोग तो माइनॉरिटी में (अल्प संख्या में) हैं । वे अधिक नहीं हैं । पर उसका हमें दृष्टांत क्यों लेना है ? दृष्टांत लेने की कोई आवश्यकता नहीं है । फिर हम सोचें कि प्रसन्नता में अवरोध क्यों आते हैं ? प्रसन्नता में अवरोध रूप, बाधा रूप ऐसा सब क्या है ? ऐसा सोचना चाहिए । तो उसके साथ यह सभी आएगा -- काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर अहम् ये सभी प्रसन्नता के

बाधक हैं । काम के कारण प्रसन्नता नहीं है, ऐसा नहीं है, पर वह प्रसन्नता बाद में खेद पैदा करती है । यदि क्रोध किया और उस क्रोध से मानो कि तुम्हें संतोष मिला तो वह प्रसन्नता नेगेटिव (नकारात्मक) साइड में पलट जाती है । इसलिए यह सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहं, राग, द्वेष आदि जो वृत्तियाँ हैं, इन वृत्तियों को हम संतुष्ट करते हैं, तब दूसरे किसी के साथ हमें आनंद होता है । यह एक प्रकार की प्रसन्नता हुई । इसीका कुछ समय बाद रूपांतरण होकर निम्न गति होती है । निम्न अर्थात् निचली गति होती है । अर्थात् व्यक्ति अज्ञान की ओर बढ़ता जाता है ; ज्ञान की तरफ नहीं ।

सचमुच की प्रसन्नता उसे होगी, जिसकी प्रसन्नता का विकास हुआ होगा । उसकी हमेशा ऊर्ध्वगति होगी । तब हम सोचते हैं कि प्रसन्नता हमें चाहिए तो सही, पर नेगेटिव (नकारात्मक) साइड की प्रसन्नता नहीं चाहिए । हमें ऐसी प्रसन्नता चाहिए कि जो हमें ऊर्ध्व की ओर ले जाय और जैसे-जैसे हमारा ऊर्ध्वगमन होगा वैसे-वैसे प्रसन्नता का प्रत्यक्ष लक्षण आनंद होगा । प्रसन्नता हुई सही पर उसका कोई लक्षण तो दिखाई देना चाहिए न ! यों ही हम से नहीं माना जाएगा, उसका लक्षण आनंद है । यों तो दुःख, उपाधि, कठिनाई, उलझन ये सब व्यवहार में आते हैं । ये आते हैं, तब बिलकुल शांत रहें । प्रसन्नता हुई है, इसके कारण वे शांत रहते हैं । इससे, जो सारी उलझन, कठिनाई, विपत्ति, आपत्ति – ये सारे विघ्न – प्रॉब्लेम (समस्या) उसके जीवन में आते हैं, तब वह प्रसन्नतायुक्त है, इसके कारण उसे प्रसन्नता होने से वह

शांत है । उसका मन किसी से भी विचलित नहीं होता । मन, बुद्धि, चित्त और अहम् इन किसी से भी विचलित नहीं होता । वह शांत रहता है । शांत होने से वह भी उसका समाधान शीघ्रता से कर सकता है । मन के साथ बुद्धि, प्राण भी हैं । प्राण भी उसके साथ मददरूप होता है । इसलिए रास्ता खोज निकालता है । उसे बहुत देर नहीं लगती । हम मानते हैं वैसा क्षणभर में उसे मिल जाता है कि 'इसका ऐसा करना है ।' इसके बाद वह उसी अनुसार करता है । इससे प्रॉब्लेम्स हल हो जाते हैं । उसका उसे आनंद होता है । उसे ऐसा लगता है, 'चलो, यह तो अच्छे ढंग से हल हो गया ! इस बारे में, मैं क्या मूर्ख जैसे सोच रहा था ?'

जीवन में कोई भी प्रश्न आये, उसे हल करे बिना नहीं चलता । हल तो करना ही चाहिए । न हल करें तो हम दुःखी होते हैं । प्रसन्नचित्त रहने का कोई निश्चय नहीं है, कोई कामना नहीं है, कोई अभिलाषा नहीं है, वह कुछ भी उसके बारे में जानता नहीं या उसके बारे में समझता नहीं है, ऐसे व्यक्ति को भी कठिनाई, विघ्न, आपत्ति से ये सब आते हैं । यह उसे सही या गलत ढंग से हल करना ही होगा । उसे हल किए बिना नहीं चलेगा । उसे भी हल करना पड़ेगा । वह पहले जिस तरह से अपने आप – स्वयं जो हल करता है वैसा वह व्यक्ति नहीं हल कर पाएगा । सोच-सोच कर मर जाएगा, पर उसे सही सूझ नहीं जागेगी । महात्मा गाँधी थे, उन्होंने लाहौर में स्वराज की प्रतिज्ञा ली कि 'मुझे ब्रिटिश राज्य नहीं चाहिए । हमें अपना राज्य चाहिए और हम उसके लिए सत्याग्रह करेंगे ।' तब सभी ने गाँधीजी को नेतागिरी सौंपी ।

पर सत्याग्रह किसका करें ? इसका कोई पता नहीं चला और महात्मा गाँधी को भी नहीं पता था । इससे वहाँ से आकर प्रसूता की वेदना में पड़ गए थे । पूरी रात जागे थे । चबूतरे पर घूमा करते, भजन में कुछ गाते भी सही और इसी सोच में तल्लीन रहते । उन्हें छठे दिन सूझा, गाँधीजी इतने महान व्यक्ति थे, तब भी नाचे और कूदे । प्रसन्नता विकसित होती है, तब हमारे जीवन में कितनी ही पहेलियाँ-प्रश्न जागते हैं, वे सरलता से अचानक बहुत देर लगे बिना हल होते हैं । यह जो हल है, वह योग्य ढंग से हल होता है । इसमें किसी प्रकार का द्विधापन नहीं होता है । उसमें वह स्वयं ही कन्विन्स (समझ) हो जाता है । इसीलिए प्रसन्नता जिसके जीवन का ध्येय है, उसे वह विकसित होती है । प्रसन्नता यह आनंद का एक विभाग है । आनंद का एक भाग प्रसन्नता है । इसलिए आनंद भी खिलता है । जैसे आनंद बढ़ता जाता है वैसे एकाग्रता, केंद्रितता अपने आप हम में प्रकट हो जाती है । और इनका प्रगटीकरण यानी अनेक में हो तब भी एक में ही हमारा मन रहा करता है । यह प्रसन्नता की खूबी है । जब प्रसन्नता जीवन में एकाग्र होती है, तब यह प्रसन्नता हमेशा एक में ही नहीं पड़ी रहती । हमेशा विस्तरित होती है ।

सूर्य की किरणें संसार में विस्तृत फैलती हैं । चंद्र की किरण विस्तृत फैलती हैं । पृथ्वी का जो आभास है – पृथ्वी की किरणें नहीं हैं, तब भी हम हजारों मील दूर से देखें तो उसकी भी किरणें है ऐसा हमें लगता है । यानी ये भी विस्तृत होती हैं । सूर्य, चंद्र, पृथ्वी को कहाँ देखने

जाएँ ? प्रत्येक विकसित होता है । व्यक्ति छोटा हो पर पाँच, दस, बारह, बीस, पच्चीस, पैंतीस, चालीस वर्ष का होता है वैसे ही शरीर से भी विकसित होता है । प्रवृत्ति से भी विकसित होता है । यों देखें तो इस संसार में प्रत्येक का स्वभाव विकसित होनेवाला है । विकास का निशान निश्चित नहीं है, यह बड़ी बाधा है । ऐसा यदि होता तो यह विकास ओर ही प्रकार का होता । इसलिए उसे भी चढ़ाता है और दूसरों को भी चढ़ाता है । यह विकास का ध्येय, इसकी सुदृढ़ता उसके पास नहीं है ।

सामान्य रूप से तो प्रत्येक व्यक्ति थोड़े बहुत प्रमाण में जीवन में प्रसन्न रहता है सही । न रहता हो तो जीवन बरबाद हो जाय । उसे जीना अच्छा नहीं लगेगा । जो थोड़ी बहुत यद्वातद्वा जैसी भी जीने में प्रसन्नता है, इसके कारण जीना अच्छा लगता है । यानी प्रसन्नता जीवन के मूल में है सही । उस प्रसन्नता को विकसित करने के लिए जिन साधनों का हमें उपयोग करना चाहिए, उसके बारे में हम में से किसी ने सोचा नहीं है । हमें प्रसन्नता चाहिए सही । तो उस प्रसन्नता को हमारे जीवन में किस तरह प्रकट करें और विकसित करें ? इसका विचार हमने नहीं किया है । विचार नहीं किया और नहीं किया जाता है, इसका मूल कारण है प्रसन्नता के बारे में हमारी जिज्ञासा पूर्ण रूप से जागी नहीं है । यह प्रसन्नता हमें प्राप्त करनी है, हासिल करनी ही है, ऐसी उसे दृढ़ भावना नहीं जागी है । इस प्रसन्नता का अनुभव करने के लिए जो छटपटाहट चाहिए वह भी उसमें नहीं जागी है । इसलिए उसके द्वारा प्रयत्न नहीं किये जाते हैं, यदि मूल में हो तो ही प्रयत्न होते हैं । अन्यथा प्रयत्न भी नहीं होते हैं ।

९९.९९ प्रतिशत व्यक्तियों को ऐसी जिज्ञासा नहीं है । अब, मानो कि किसी ने सोचा – इस में कूद पड़ना है तो उसे क्या करना चाहिए ? वह अनजान है । वह क्या करें ? मूल प्रश्न यह है कि कितना भी व्यक्ति अनभिज्ञ हो पर यदि उसे जिज्ञासा जागती है तो जिज्ञासा जैसा कोई सद्गुरु नहीं है । वह जिज्ञासा उसे रास्ता दिखाती है । यह बात आपने कह दी तो सही, पर प्रैक्टिकल स्टेप्स (व्यवहारिक कदम-आचरण कर सकें ऐसा मार्ग) बतलाएँगे कि नहीं ? ऐसा हो तो जिज्ञासा प्रैक्टिकल स्टेप्स बतलाती है ।

'हम तो सामान्य व्यक्ति हैं, हमें तो उसके फाउंडेशन के कारण बतलाइए' ऐसा कोई मुझे कहे तो मैं कहता हूँ, 'भाई, प्रसन्नता यदि हमें प्राप्त करनी हो तो प्रसन्नता के लिए हमें अभी के जीवन से प्रारंभ करना चाहिए । भविष्य में जब होगा, तब प्राप्त करेंगे ऐसा नहीं सोचना चाहिए, पर अभी के जीवन से प्रारंभ करना चाहिए । हमेशा हमें सुखी रहने के प्रयत्न करने चाहिए । प्रसन्न रहने के प्रयत्न करने हैं ।' 'संसार में इतने सारे पचड़े और झंझटें हैं, उसमें प्रसन्न किस तरह से रह सकते हैं ?' तो उसे मैं कहता हूँ कि 'तुम्हारी सोच प्रसन्न रहने की पक्की नहीं हुई है । प्रसन्न रहने का तुम्हारा विचार पक्का हो तो किसी भी परिस्थिति में रहने एटलिस्ट (कम से कम) तुम्हारे में अवेरनेस (सभानता) तो होगी ही । यदि अवेरनेस नहीं होगी तो पक्का निश्चय ही नहीं हुआ है । इसलिए हम यदि किसी भी स्थिति में हों और यदि हमें प्रसन्नता को पाना हो और यदि उसका निश्चय पक्का हो, दृढ़ निश्चय – ठोस मरजिया निश्चय हो तो उसकी

अवेरनेस आए बिना नहीं रहेगी । जिसकी अवेरनेस ना आए तो हमें समझ लेना चाहिए कि उस विषय में हमने गहन विचार नहीं किया है । या उस विषय को हमने आत्मसात् नहीं किया है । अथवा वह विषय हमें पूरी तरह गले नहीं उतरा है । अथवा उस विषय को हमने अपने जीवन-केन्द्र रूप में स्वीकार नहीं किया है ।' ऐसा यदि तुम्हें करना है तो तुम यदि ऐसा निश्चय कर पाओ तो उसकी अवेरनेस तुम्हें होनी चाहिए ।

तुम्हें चाहे कुछ भी करना हो पर उसकी अवेरनेस तुम्हें रहनी चाहिए । जैसे यहाँ हम घर से अस्पताल में आये, तो उस अस्पताल में जाने कि हमें अवेरनेस है । अवेरनेस जीवंत नहीं है पर मन में है । इसलिए अस्पताल की ओर ही जायेंगे । दूसरे कहीं नहीं जाएँगे । जैसे, पागल व्यक्ति कहीं भी भटकता रहता है वैसे हम नहीं जाएँगे । इससे, ऐसा जब कुछ हो, तब उसकी अवेरनेस जागनी चाहिए । इसलिए हमें यदि प्रसन्नता प्राप्त करनी हो तो प्रसन्नता की अवेरनेस हम में जागनी चाहिए । ऐसी अवेरनेस जागे तो कुछ भी हो हमारी प्रसन्नता कहीं से भी डूबी, उसका भंग हुआ या कहीं से उसमें वैराग्यपन आया तो हमारी जो अवेरनेस है, वह हमें जगाये कि 'भाई, हमें तो कुछ भी हो, तब भी प्रसन्न होना है और प्रसन्न बने रहना ही है । ऐसे संयोग में हम विचलित हो जाएँ वह ठीक नहीं है । हम प्रसन्न रहें और प्रश्न को हल करें ।' प्रश्न का हल तो लाना ही पड़ेगा, पर फंडामेंटल (मूलभूत रूप से) हमें जो प्रसन्न रहना है या होना है, उसे बनाए रखें । वह तुम में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण शांत हो तो अपनेआप सरलता से प्रत्येक प्रश्न का हल तुम्हारे अंदर जागेगा और

सरलता से सॉल्व (निराकरण) कर सकेंगे । यह उसकी विशेष खूबी है । जिनके जीवन में ऐसे प्रश्न होते हैं, उसका जो हल निकालते हैं, उसमें दूसरे व्यक्ति भी समाहित होते हैं । उन दूसरे व्यक्तियों को बिलकुल अन्याय न हो, उस ढंग से प्रसन्नता उसका हल निकालती है । यह एक उसकी सबसे बड़ी खूबी है ।

यह मैं कोई ऐसे नहीं कहता । यह अनुभव की बात है । दूसरा, हम जीवन में कोई भी काम करने बैठे, हमने स्वतंत्ररूप से कोई काम किया तो यह प्रसन्नता उस काम में मददरूप है । मददकर्ता है इतना ही नहीं, पर उस काम में अधिक से अधिक हमें तल्लीन करने रसयुक्त बनाती है । इतना ही नहीं, पर उस काम में तुम्हें किसी प्रकार की असुविधा न आये, कठिनाई न आये, किसी प्रकार की तुम्हें मन में अस्थिरता नहीं आएगी । अब मानो कि किसी बात में उसे कठिनाई आई, तब प्रसन्नता जिसका ध्येय है, ऐसा व्यक्ति उस समय मात्र कठिनाई का विचार नहीं करेगा । जो लोग कठिनाई का विचार कर कठिनाई का हल निकालने जाते हैं, वह नहीं होगा । जैसे वडोदरा शहर को हमें देखना हो तो वड़ोदरा शहर से ऊँचाई पर उड़ो तो वडोदरा देख सकेंगे । उसी तरह कठिनाई का उपाय खोजना वह संभव नहीं होगा । कठिनाई से दूर हो जाओ । कुछ तटस्थ हो जाओ तो तुम कठिनाई का सच्चा हल निकाल सकोगे ।

प्रसन्नता की खूबी यह है कि यदि तुमने जीवन में प्रसन्नता का ध्येय लिया है तो जिनमें प्रसन्नता आती जाती है, वह तटस्थ होता जाता है । यह उसका दूसरा परिणाम है । प्रसन्नता जिसके जीवन में प्रकट हुई

उसमें तटस्थता बढ़ती जाएगी । तटस्थता आती जाएगी, जिससे बंधन दूर होता जाता है । अलग पड़ सकता है । तुम में तटस्थता आयी । इससे तुम उस प्रश्न का प्राण, प्रश्न का हार्द, उस प्रश्न का विषय सभी को तुम सरलता से जान सकोगे । जिसका हल निकालना है या जो कठिनाई, दुःख आया हो, जो प्रश्न या पहेली अथवा जो कुछ हमारे जीवन में, कामकाज में उपस्थित हुए हों, उन्हें जानकर सरलता से उनका हल तुम निकाल सकते हो । इस तरह से सामान्य व्यक्ति यह नहीं निकाल सकता है । चाहे कितना भी काबिल से काबिल व्यक्ति, बहुत व्यवहार में होशियार व्यक्ति भी उस प्रश्न को हल करे और वह प्रसन्नतावाला – जिसे ऐसी तटस्थता जाग चुकी है, विवेक जागा है, वह हल निकालेगा तो उन दोनों में आसमान-जमीन का अंतर होगा । यह बात भी इतनी ही निश्चित है ।

हम बात कर रहे थे कि प्रसन्नता किन –किन साधनों से विकसित की जाय ? तो मूल में तो उसे ध्येय निश्चित होना चाहिए । मुझे यह करना ही है । उसके पीछे ऐसा विचार –– मरजिया निश्चय हो और फिर धीरे-धीरे उसे अपने काम में लाना चाहिए कि मुझे प्रसन्न रहना है । प्रसन्न रहकर काम करे । मानो कि दुःख आ पड़ा, विघ्न आ पड़ा, तब हो सके उतनी शांति रखें, उद्विग्न न हों । उद्वेग प्रसन्नता को मारनेवाला, प्रसन्नता की मात्रा को कम करनेवाला है ।

जब तटस्थता आती है, तब हमारे मनादिकरण भी शांत होते हैं । इससे उस शांति में जो उसका विचार करता है वैसा वह दूसरा व्यक्ति

नहीं कर सकता, क्योंकि उसके मनादिकरण उतने शान्तिवाले नहीं होते । शांति और तटस्थता से विचार करके हल लाये उसे शीघ्र ही हल मिल जाता है । हल मिलने से उसके काम की सरलता दूसरे सभी व्यक्तिओं से अधिक हो जाती है, पर कुछ व्यक्ति ऐसा कहें कि 'साला, मूर्ख है, कोरा पंडित है ।' पर उसके काम देखो तो सभी सरल और तुरंत हल कर सके वैसे हैं । और उसके काम का प्रोग्रेस (विकास) भी अच्छा हो सकता है । और दूसरी खूबी यह है कि कैसा भी बुद्धि का 'ढ़' हो - सभी की कोई समान बुद्धि नहीं होती । बुद्धि थोड़ी-सी ना हो वैसे भी व्यक्ति होते है । ऐसा व्यक्ति भी यदि प्रसन्नता से व्यवहार करे तो उसकी बुद्धि खिलती है । इस मार्ग में भी उसकी बुद्धि खिलती है । जब उसकी बुद्धि खिलती है, तब उसके मार्ग में आते अनेक प्रश्नों को हल करने में मददरूप होती है ।

दूसरा, जब प्रसन्नता बढ़ेगी, तब उसमें का एक फल तटस्थता प्रकट होती है । बुद्धि प्रकट होती है । बुद्धि प्रकट हो, उसके साथ ही उसके प्राण प्रकट होते हैं । अहम् तो साथ में होगा ही । इसप्रकार, ऐसे-ऐसे प्रश्नों का जब उद्भव होता है, तब उसमें उस सरलता से तटस्थता, बुद्धि, प्राण, विवेक ये सभी खिले होते हैं अथवा खिलते जाते हैं । इसके कारण बहुत सरलता से एकदम उसे सूझ जाता है कि अब ऐसा करना है ।

उस प्रसन्नता के लिए हमें क्या करना है ? उस मूल प्रश्न पर हम आयें । हमें प्रत्येक कर्म करते समय प्रसन्नता को ही आगे रखना चाहिए ।

जैसे विवाह का मुहूर्त लिया हो और वरराजा को जब बारात में ले जाते हैं, तब वरराजा को हम शीर्षस्थ रखते हैं, उसी तरह प्रसन्नता को हमें महत्त्व देना पड़ेगा । वह भी प्रत्येक कर्म में इस प्रसन्नता को सर्वोत्तम रखना है । यदि ऐसी अवेरनेस (सभानता) नहीं रही तो हम रास्ता भटक जाएँगे । यह अवेरनेस कब रहेगी ? जब प्रसन्नता के लिए हमारा दृढ़ निश्चय, अडिग निश्चय, मरजिया निश्चय पक्का हुआ हो । 'यह हमें करना है, करना है और करना ही है ।' ऐसा हमारा दृढ़ निश्चय हो और मरजिया निश्चय हुआ हो तो उसकी अवेरनेस हमें रहेगी । बाकी, हमें इसे प्राप्त करने की जैसी-तैसी वृत्ति हुई होगी तो नहीं होगा । तो अवेरनेस हम में नहीं रहेगी ।

अवेरनेस रहे बिना तो आगे नहीं बढ़ सकोगे । तुम्हें जिस बात में प्रगति करनी है, उस प्रत्येक बात में तुम्हारी अवेरनेस जीतीजागती होनी चाहिए । उसके बिना नहीं होगा । तब हमने यह देखा कि जिस किसी में प्रसन्नता को शीर्षस्थ रखना चाहिए । 'चाहे कुछ भी हो हम प्रसन्नता को बनाये रखेंगे सही, पर एकदम कुछ साली रहती नहीं है । सो रहे, ऐसा हम किस तरह से करें ? तो आप भाई, तुम्हारे स्वयं के मार्ग में प्रसन्नता के शत्रु पड़े हैं, उन्हें पहले दूर करो । रागद्वेष उसका सबसे बड़ा शत्रु है । तो उसे निकालो, पर उसे निकालने में जन्म के जन्म बीत जाय । तब उससे अच्छा मैं कहता हूँ कि 'तुम्हारी बात सच है' अथवा इस विषय में जो विचार करनेवाले हो तो उसे कहूँ कि 'तुम्हारी बात सच है' – इसकी अपेक्षा हम प्रसन्नता बढ़ाते हुए जहाँ रागद्वेष आये, वहाँ रागद्वेष

पर हम चिपके न रहें । केवल रागद्वेष को टालने के लिए हमें अनेक जन्म चाहिए । बुद्ध भगवान ने कथा लिखी है, उस तरह उन्हें गुण विकसित करने में कितने ही जन्म गये हैं । तो इस तरह से तो हम सफल होंगे नहीं । तब हम उस प्रसन्नता को साधते हुए रागद्वेष जहाँ आए वहाँ रागद्वेष से अलग पड़े । उसमें हमें कहीं उलझना नहीं है । विचार हमारे पास है । बुद्धि है, विवेक है; यह तटस्थता जागी है । यह सभी जागा है । इसलिए, उससे अलग अवश्य हो सकते हैं । ना हो सकें वैसा नहीं है । हम रागद्वेष में न फँसे और यदि फँसे तो हमारी प्रसन्नता टूट जाएगी । फिर हमारी प्रसन्नता कभी भी टिक नहीं सकेगी । काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि हैं, तब उस समय क्या करें ? तब भी हमें यही वृत्ति धारण कर रखनी है ।

'इन सबको रखकर हम प्रसन्नता के प्रदेश में प्रवेश करें ऐसा किसी काल में नहीं हो सकता । इसलिए प्रसन्नता के प्रदेश में जाते-जाते मार्ग में यह सब आएँ तो उन्हें टालते जाओ । प्रसन्नता की अवेरनेस रखो ।' मेरी अवेरनेस प्रसन्नता के लिए है तो प्रसन्नता पाने के लिए मुझे आगे बढ़ना है । उसमें ये सब यदि आयेंगे तो ये प्रसन्नता को मिटा डालते हैं । उसका खून कर देते हैं । इसलिए मुझे यह सब नहीं चाहिए । वह स्वयं निर्णय करेगा । बहुत छोटे बच्चे को जो सचमुच की वस्तु चाहिए, वह उसमें ही मन रखेगा । दूसरा कुछ भी उसे दो तो वह बालक फेंक देगा । उसे जो चाहिए वही दो तो ही उसे संतोष होता हे । यह वास्तविकता इतनी ही सत्य है । किसी को भी पूछो । इसी तरह जब प्रसन्नता की हमारे दिल में यदि वास्तविक माँग होगी तो उस समय इतना अधिक खुलकर

उसके सामने बगावत करके उसे नकारेगा । उसके सामने इनकार करेगा कि 'मुझे नहीं चाहिए ।' स्वयं उसमें नहीं मिलेगा । अलग रहेगा, क्योंकि उसमें विवेक जागा है । बुद्धि आयी है । तटस्थता आयी है । यह सबके आने से उसके साथ वह मिश्रित नहीं हो सकेगा ।

काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर, रागद्वेष इन सबसे मुक्त – अलग होने का मार्ग प्रसन्नता के कारण मिलता है । हम यदि तटस्थ रूप से सही तरीके से सोचें तो । इसलिए धीरे-धीरे एक बार नकारा, दो बार नकारा, तीसरी बार नकारा, चौथी बार..... अनेक बार नकारना पड़ेगा । उसे जब ऐसा लगता है कि उसका एक स्वतंत्र प्राण है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहम् आदि हुए । उनकी आइडेन्टिटी (अस्तित्व) ऐसा है कि उनमें शक्ति है । उसकी उसे अवेरनेस है । इतना ही नहीं, पर उसमें एक इस प्रकार की शक्ति है कि दूसरे को वह बहका सके । दूसरे को अपने पक्ष में ले लेने की उसमें कुशलता है, कला है । तब ऐसा सब होने पर भी इस प्रसन्नता द्वारा हम दूर रह सकेंगे । हम सभी को सीखा सकेंगे ।

हम प्रत्यक्ष जीवन जीते हैं और तेजस्वी जीवन जीते हैं । जीवन उत्तम प्रकार का जीते हैं । कोई ध्येयवाला जीवन जीते हैं, उसका प्रत्यक्ष लक्षण प्रसन्नता है । और प्रसन्नता जीवन में प्रकट होती है, तब जीवन में कोई भी कुछ भी कठिनाई होने पर उसे कठिनाई नहीं लगती है । कठिनाई सरलता से हल होती है ।

'**मोटा**, आपने सारी बातें बैठे-बैठे तो की, पर यह आपकी

प्रसन्नता और हमारा रोट – इन दोनों का कोई मेल खाता है कि फिर ऐसे ही आप भाषण दिया करते हो ?' तो उसका मेल खाता है । प्रसन्नतावाला व्यक्ति किसी भी काल में आलसी नहीं होता है । वह हमेशा उद्योगी, उद्यमी, सावधानीवाला, धीरजवाला रहेगा । वह व्यक्ति भले गरीब व्यक्ति होगा, पर खाने के लिए उद्यम करेगा । जितना मिलेगा उसमें संतोष मानेगा । एक रोट खाने के लिए चाहिए और आधा रोट मिले तो भी उसे आधा रोट खाकर संतोष होगा । 'उसका घर कैसे चलेगा ?' यह तो तुम अपनी बुद्धि से सोचते हो । उसकी बुद्धि से सोचोगे तो वह बहुत सुंदर ढंग से चलता होता है । किसी भी दिन उस बारे में उसके मन में प्रश्न नहीं उठता । उसे कमाने में, रोट पाने में, कपड़ा-लत्ता प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है । इस प्रकार की मेहनत किया करता है । उसमें से उसे यह सब मिला करता है । उसमें मीनमेख प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है । थोड़ी भी नहीं । इतना ही नहीं, पर व्यवहार में खर्च तो चाहिए । तब भी उसका व्यवहार सँभला है । 'अ, ब, क, ड का व्यवहार प्रत्यक्ष बतलाओ तो हम मानेंगे । आप तो थोप रहे हो ।' ऐसा कोई कहे तो उसे उदाहरण अपने आपका ही दूँगा ।

मेरा सारा व्यवहार चला करता है । जिसे जाँचना हो, वह जाँचे । बचपन से लेकर अभी तक की मेरी पूरी जिंदगी देखनी हो तो वह देख सकता है । कोई कहे कि 'आपकी बात छोड़ो । कुछ भी किया हो ।' किन्तु अ, ब, क, ड का क्या होता होगा ? उसके बारे में बात करो न ।' तो उस बारे में बात कर सकते हैं । जिसके पास जो कुशलता है, उस

कुशलता का व्यापार करे तो वह दीप्तमान हो उठेगा । व्यापार करने में पैसों की मदद चाहिए । उसके पास इतनी पूँजी है और मानो कि उतनी पूँजी ना हो और कुशलता है तो किसी के साथ साझेदारी करे । तो स्वयं उसमें से आगे बढ़ेगा । साझेदारी करते हुए वह आगे जाएगा । इस प्रकार किसी न किसी प्रकार से प्रसन्नतावाला व्यक्ति मार्ग निकालता है । वह दो हाथ जोड़कर आकाश के सामने देखकर बैठे नहीं रह सकता है । और अपने मार्ग में कठिनाई आई तो कठिनाई का हल निकाले बिना वह नहीं रहेगा ।

('जोड़ाजोड', प्र. आ. पृ. १८ से ३१)

ता. ९-१०-१९७४

**प्रसन्नता अर्थात् हलकापन**

कमल के फूल की तरह जब तक हमारी बुद्धि सहज रूप से खिलती नहीं, तब तक जीवन के ऊर्ध्वमार्ग में ऐसी बुद्धि किसी काम में नहीं आ सकती । पक्षियों के निर्मल कलरव जैसा जीवन में हर्षध्वनि उदित नहीं होती, वहाँ तक चित्त की प्रसन्नता भी प्रकट नहीं हो सकती । हमारी बुद्धि रागद्वेष से प्रेरित और द्वंद्व से कुंठित हो गई होती है । अमुक प्रकार के नियम से वह बंधी और मर्यादित संक्षिप्त हो गई होती है । फिर भी उसे अनेक प्रकार के आग्रह, मत, मान्यताएँ, धारणाएँ आदि रहा ही करती हैं । उससे पार होने या पार जाने की उसे उन्नतिप्रेरक व्याकुलता नहीं होती, तब तक वह अपनी स्थिति में ही पड़ी रहती है । उसकी गति भी, उसकी स्थिति जैसी हो, उसी ढंग की होगी । अनेक प्रकार के आवरणों से हमारी बुद्धि आच्छादित हुई है ।

**ऊपर जो कहा उन सभी से हलकापन अनुभव करना ही उसका नाम प्रसन्नता ।** जिसे किसी भी प्रकार का कोई बोझ लगता है, वह कभी प्रसन्नचित्त नहीं रह सकता । जो हमेशा लदा रहता है, वह हलका नहीं हो सकता है । मनुष्यजीवन के सभी आनंद मन के निचले स्तर की भूमिका के हैं, और जहाँ तक वे हमें अति महत्त्व के लगा करते हैं, इतना ही नहीं, परंतु वे निश्चित रूप से मन में दृढ़ हुए होते हैं, वहाँ तक हम उन सभी को नहीं छोड़ पाते हैं । इन सभी निम्न भूमिका के आनंद की वासना को मनुष्य तभी छोड़ सकता है, जब वह सभी को और उन सभी में से हृदय के दृढ़ अनुभव से उसका भ्रम टूट गया हो, जहाँ-जहाँ और जब- जब

मनुष्य जीवन के ऐसे निम्न स्तर के आनंद और सुख का आखिरी छोर पहुँचता है, वहीं और वहीं से ही उस क्षण से ही, उसके आनंद की भूमिका किसी दूसरे क्षेत्र की बनती जाती है ।

मानव**जीव** की पारमार्थिक दृष्टि अधिक स्पष्ट, विस्तृत और उदार उस समय से ही बनने लगती है, और ऐसा अनुभव वह जब करता है, तब भी मनुष्य की गिनती अनुसार भरपूर सुख के आनंद में भी कभी-कभी अतृप्ति या असंतोष की ज्वाला उसे प्रकट होती है । इसप्रकार, एक तरफ जीवन की दृष्टि और वृत्ति ऊर्ध्व दिशा में होने लगती है और दूसरी तरफ जीवन के निचले तरफ के स्थूल आंदोलन उसे जकड़े रखने के लिए मथते हैं । और ऐसा जीवन्त मंथन जब सचमुच मूर्त स्वरूप पकड़ता है, तब कभी हृदय के उच्चतम, दिव्य, रम्य और भव्य जीवन की उसे पुकार उठती हो, ऐसा भाव अनुभव करता है । और ऐसी पुकार ही मनुष्य को उन्नत दिशा में धकेलती है । तथापि कितनी ही बार हम योग्य रूप से तैयार न होने से ऐसी उद्भवित प्रेरणा भी शांत हो जाती है, और फिर से जीवन में अंधकार छा जाता है । ऐसा मनुष्य के जीवन में अनेक बार होता है । वह चढ़ता है और पड़ता है, परंतु मानव-जीवन की महत्ता और साधना की दृष्टि यदि उसकी खुल गई होती है, तो उसे बारंबार अन्तर की अन्तरतम हाँक सुनाई देती है । और ऐसी अंतर की हाँक जोरदार रूप से बढ़ती ही जाती है, तभी जीवन में सच्चे प्राण प्रकट होते हैं । और ऐसे **जीव** के जीवन की साधना होती जाती है कि नहीं उसका एक रूप से यह माप भी गिन सकते हैं । जीवन की हाँक जब पड़ती है, तब एक अन्य

प्रकार का जीवन में जोश और आवेश आ जाता है । उसका नशा भी कुछ और प्रकार का होता है । और उस समय का शौर्य भी अजब-गजब होता है । उस हाँक का चेतन हमें बुद्धि के मर्यादा क्षेत्रों को तोड़ने में प्रेरणात्मक बनता है । गाँव में जब डाका पड़ता है और ढोल बजे तब व्यक्ति सोता हो, वह जागकर सज्ज हो जाता है और शत्रु के सामने लड़ने को तैयार होता है । उसी तरह जीवन की हाँक का ऐसा ढोल बजता है, तभी वह स्थूल मर्यादाओं से पर हो सकने शक्तिमान बनता है । बाकी तो बुद्धि अपने आप उसके क्षेत्र को पार नहीं कर सकती ।

बुद्धि मददकर्ता है और अकल्याणकर्ता भी है । बुद्धि जहाँ देख नहीं पाती, वहाँ का भी वह बोध कराने को प्रेरित होती है । बुद्धि को जहाँ उसकी योग्य वास्तविकता का सचमुच का ज्ञान प्रकट नहीं हुआ होता, वहाँ भी बिना समझे-बूझे अपनी बात बताने लगती है । तभी सचमुच की कठिनाई और आफत खड़ी होती है । और वह सब मन के नीचे के स्तर में हम बंधे होते हैं और उसमें से मुक्त होने की क्रिया चल रही होती है । इसलिए उस दिशा में से पीछे गिराने के लिए सारे सूक्ष्म खेल हैं, उसका ज्ञानपूर्वक का चेतनयुक्त जागृति के साथ की समझ **जीव** को जब होती है, तभी साधक चेतनाशील रह सकता है । **साधक कुछ भी यद्वातद्वा रूप से करे या मान लेने से चलनेवाला नहीं है । कुछ भी उसकी योग्यता के प्रमाण में और सही उच्च भाव के अर्थ में हुआ करता है, तब एक प्रकार का आनंद हमें लगा करता है । उसका ही नाम प्रसन्नता** । ऐसी प्रसन्नता प्राप्त होते ही स्थूल जीवन में रहने पर भी उस पर तैर

सकने की संभावना में **जीव** प्रवेश कर सकता है । साधना के भाव में से प्राप्त हुई प्रसन्नता **जीव** को जीवभाव में नहीं रहने देती है । जीवन की साधना का अर्थ ही यह है कि मनुष्य-जीवन के आचरण व्यवहार के प्रत्येक करणों द्वारा इन सभी का जीवन्त सुमेल उच्च भाव की दिशा के गतिवहन में रहकर जीवन के उच्च भाव में प्रसन्नता अनुभव हो, तो ही साधना की यथार्थता और सार्थकता है । तब सही रूप से समझ सकेंगे की साधना के मार्ग में हम दृढ़ होते जा रहे हैं । ऐसा तब हो सकता है, जब हम अपने मन को तथा इन्द्रियों को तथा दूसरे करणों को साधना के अलावा दूसरा कुछ भी करने जैसा नहीं लगता हो, ऐसा इन सभी को हमें साधना के अनुभवों के द्वारा दृढ़ करना है कि जिससे फिर उसी में ही वे सब लय हुआ करें ।

हमें कुछ भी यहाँ-वहाँ के जीवन के या जगत के या सुख-दुःख की पहेली का कुछ समाधान प्राप्त करने से चलनेवाला नहीं है । यह सब करने से हृदय के झरने से बहती ऐसी नैसर्गिक प्रसन्नता नहीं जाग सकती । जैसे-जैसे साधना का भाव जीवन के अंतरविकास में गहरे-गहरे प्रवेश प्राप्त करता जाता है, और साथ-साथ समझपूर्वक विस्तार भी पाता जाता है, वैसे-वैसे **जीव** की जीवनदृष्टि भी बदलती जाती है और उस समय उसकी प्रसन्नता सदा ही अखंडित बहा करती है । ऐसा **जीव** कभी तुच्छता में प्रवेश नहीं करता । साधना की तपस्या से **जीव** जो दशा प्राप्त करता है और उसमें से प्रसन्नता का जो भाव प्रकट होता है, उसमें प्रत्यक्ष

शक्ति का अनुभव हुए बिना नहीं रहता है । **जीव** की उस समय की प्रसन्नता खाली विस्तार या हलकापन या शांति या निश्चिन्तता या खुला हास्य इतना ही मात्र नहीं होता और साधना की भूमिका में एक के बाद एक कदम बढ़ाने में साधना के मार्ग में से ही प्राप्त प्रसन्नता और शक्ति अत्यधिक प्रेरणात्मक सिद्ध होती है । फिर, **जीव** की उस समय की प्रसन्नता का क्षेत्र उच्चभूमिका का रहता है । जो-जो जीवन को रचनात्मक रूप से स्वीकार करने योग्य हो, वहाँ ही मन ठहरता है । नहीं तो कुछ भी उलटा-सीधा आ जाने से एकतार बनी हुई प्रसन्नता का खंडित होने जैसा होने पर हमें चेत जाना पड़ता है, और इस प्रकार वह हमारा सच्चे में सच्चा उच्च जीवन का मार्गदर्शक बनता है ।

प्रसन्नता को बहुत सरल स्थूल अर्थ में समझाने का तुम्हें किस ढंग से कर सकता हूँ ? इसके तो अनेक उदाहरण दे सकते हैं । कहीं कुछ आवश्यक खो गया हो और महामेहनत और बहुत खोजने से न मिलता हो और अचानक मिल जाय, तब उसे जिस प्रकार की चैन की वृत्ति पैदा होती है, कोई कठिन काम का अपनेआप एकदम फैसला आ जाय, तब जो एक प्रकार का संतोष दिल अनुभव करता है, कोई गणित का कठिन सवाल हो और किसी भी प्रकार से वह सवाल मिलता न हो और अनेक बार गिन चुके हो पर फिर अचानक किसी तरह सवाल का उत्तर मिल जाने पर जो भाव अनुभव होता है, सभी में से और सब निपटाकर खाली वक्त में आराम से पड़े हो और तब जो खुशमिजाज में हो और तब जो सुख की दशा रहती है, जिसे कब्ज का रोग हो और यदि किसी कारण से

खुलकर उसे दस्त होता है, बहुत समय से कुछ प्राप्त करने की अदम्य इच्छा हो और वह अचानक मिल जाय, मन को खूब-खूब व्यग्र करते किसी प्रश्न का अपनेआप निराकरण हो जाय, घर में सरल-सरल वातावरण रहे, कभी कोई क्लेश, झगड़ा और संताप न हो तब जो एक प्रकार का हलकापन और शांति का अनुभव होता है, आदि प्रसन्नता को समझने के लिए स्थूल उदाहरण काफी होंगे ऐसा मानता हूँ।

जिसका मन प्रसन्नचित्त रहता है, उसकी बुद्धि भी सौम्य रहेगी ही। **जो प्रसन्नचित्त नहीं है, वह साधक ही नहीं है।** यह तो उसका प्रथम लक्षण है। इससे ही 'गीताजी' में कहा है कि 'अयोगी को बुद्धि नहीं, अयोगी को न भावना' इसका अर्थ अब हमें स्पष्ट समझ में आता है।

**प्रसन्नता अर्थात् एक प्रकार का सुखचैन, मन का खुल्लापन, सरलपन, सहजपन, जिसे चिंता होने के पूरे कारण और वैसे संयोग होने पर भी जिसे उसका कोई भार नहीं लगता, उस स्थिति को प्रसन्नता की स्थिति कहते हैं।** प्रसन्नता यह अमुक कोई उफान की स्थिति नहीं, किसी भाव की व्याकुलता भी नहीं। प्रसन्नता में स्थिरता है, धीरज है, समता है, सतत विकास के लिए अन्तरदृष्टि जिसमें खिली है और जिसमें आत्मा का प्रकट उल्लास है, प्रेम की स्निग्धता, आर्द्रता, कोमलता भी है और इसके अलावा कर्म पूरा करने के लिए हल करने की चाबी भी उसमें है। प्रसन्नचित्त मनुष्य काम को समय पर हल कुशलतापूर्वक कर सकता है। शोक और हर्ष के उफान का प्रसन्नचित्त जीव विवेक से उपयोग करता है। उसमें वह मिल नहीं जाता या उसके वश नहीं होता।

अत्यधिक गले तक काम करने से शरीर से थक गए होते हैं और हाथ, पैर और मुँह धोकर आराम से बैठे हो, तब एक प्रकार के आराम का जो भाव होता है, ऐसी कोई स्थूल स्थिति को भी प्रसन्नता की स्थिति कह सकते हैं। प्रसन्नता में स्वस्थता भी रही हुई ही है। सिर पर आ पड़े अनेक काम हों और वह एक के बाद एक हल हो जाय और वे सभी काम योग्य रूप से हुए हों, तब जो संतोष का भाव रहता है, उस स्थिति को भी प्रसन्नता का नाम दे सकते हैं।

मन की कोई भी झंझट ना रहे, किसी उलझन में मन ना पड़ जाय, सभी वृत्तिओं, भावों को शांत चित्त से, तटस्थता से विचार करे। क्रोध, भय, राग या वासना आदि में पिरोने पर एक प्रकार की स्थिरता रह सकती है, और मन उन-उन सभी को तुलनात्मक रूप से विचार कर सकता है, ऐसा होना प्रसन्नता प्राप्त किये बिना कभी संभव नहीं। प्रसन्नता से मन और हृदय हलके फूल जैसे रहते हैं। हमें सभी जगह सब हलका-हलका लगता है। कैसे भी भारी प्रश्नों को हम सहजता से हल कर सकते हैं। प्रसन्नचित्त रहने से समदृष्टि विकसित होती है। और साथ-साथ वृत्ति में समता धारण करने की शिक्षा भी मिलती है। मन का हलकापन, मन का स्वाभाविक उड्डयन भाव में तल्लीनता, मन का समतोलपन, विवेकशक्ति, तटस्थता यह सब यदि हम प्रसन्नचित्त होते हैं तो अपने आप प्रातःकाल की उषा की तरह जीवन में खिलने लगते हैं और जीवन को शोभायमान करते हैं। प्रसन्नचित्त को कहीं कोई अधिक विचार नहीं आते या किसी की भी झंझट नहीं होती या किसी प्रकार की

आकुलता भी नहीं रहती । उसे काम आने पर उसको हल कर निश्चिंत रूप से फिर वह बैठ जाता है । प्रसन्नता में निश्चिंतता है । किसी एक गुण के भाव के सामर्थ्य को यदि हम प्राप्त कर सके तो उच्च जीवन के वैसे दूसरे गुणों के भाव भी जीवन को स्पर्श करे बिना नहीं रहेंगे । इस प्रकार एक में अनेक हैं, उसका प्रत्यक्ष अनुभव साधक को होता ही रहता है ।

प्रसन्नचित्त मनुष्य को एक प्रकार के सुखद मुलायमत भरे भाव रहा करते हैं । उसका स्वभाव स्वच्छ पानी जैसा होता है । चाहे कोई भी परिस्थिति आ जाय पर उसकी प्रसन्नता घायल नहीं होती । आवेश में, प्रसन्नचित्त आवेश का मूल कारण समझ सकता है । उसके प्रति दृष्टि भी उसे पता चलती है । इससे प्रसन्नचित्त कोई भी मनोभाव का गुलाम नहीं हो सकता । वृत्ति, मनोभाव और भावना उसके गुलाम बनते हैं और उसके वश होकर उसके साधन रूप सदा रहा करते हैं । हृदय की सहजता की भूमिका में प्रसन्नता प्रकट हुए बिना आत्मा के व्यक्त स्वभाव में हम आनेवाले ही नहीं । इससे ही 'गीताजी' में कहा है कि –

**'प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।'** (२-६५)

प्रसन्नता से बुद्धि तुरन्त ही स्थिर होती है । ऐसे प्रसन्नचित्त होने से बुद्धि विभक्त नहीं होती । मतलब की बुद्धि विपरीत नहीं होती और वह 'बहुत शाखा' वाली नहीं बनती है ।

'प्रसन्नचित्तता प्राप्त हो सके ऐसे साधन कहाँ हैं ?' जो कोई **जीव** जीवन की साधना में पड़ता है, उसे यह प्रश्न उठता ही नहीं । जो उपरोक्त प्रश्न करता है, वह **जीव** साधना के बारे में कुछ समझा नहीं ऐसा

जानना । प्रसन्नता तो साधना के भाव का सतत निरंतर एकाग्रता और केंद्रितता से अनुशीलन और परिशीलन जब हुआ करे, तब वैसे- वैसे उसे होते रहते बर्ताव में से प्रसन्नता का भाव जन्म लेता है । तथापि यदि किसी **जीव** को खास प्रसन्नता का ही भाव पाना हो तो उसकी उपासना भी नीचे बतलाये ढंग से हो सकेगी ।

प्रत्येक **जीव** और प्राणी के प्रति मैत्री की भावना बनाये रखनी चाहिए । इससे **जीव** में से बैरवृत्ति कम होती है और स्पर्धा की भावना भी कम होने लगती है । फिर, करुणा की भावना का भी प्रत्येक के प्रति उसे जीवित चेतना के साथ शिक्षा का अभ्यास करने से अभिमान, अहंकारादि वृत्ति का भी लय होने लगता है । मुदिता का उस ढंग से भाव विकसित करने से साहजिक कदरवृत्ति की भावना जागती है । और परस्पर **जीव** सद्भाव से प्रेरित होते हैं और परस्पर सहायक और सहकार के उच्च प्रकार की भावना आती है और उपेक्षा अर्थात् निःस्पृहता से क्षोभ, क्लेश, मोह, ममता आदि का नाश होने लगता है और यह चार प्रकार की भावना का यदि उसकी योग्यता के प्रमाण में संपूर्ण ज्ञानपूर्वक सतत पालन-आचरण हुआ करे तो प्रसन्नता अवश्य प्रकट होगी । यह तो असल के समय से प्रवाह के अनुकूल हुआ करे ऐसे प्रयोग का सिद्ध अनुभव है, इसमें कुछ नया नहीं है । फिर, निंदा और लौकिक बातें प्रसन्नता के उदय होने में बाधक रूप है । जहाँ तक साधक का अंतःकरण काँच के समान ना हो जाये, वहाँ तक कुछ भी नहीं हो सकता । ऐसा अंतःकरण काँच जैसा हो जाने पर उसमें (काँच में) पर्वत,

समुद्र, नदी तथा ऐसा बहुत कुछ आदि यथार्थ रूप से संपूर्ण प्रकट स्वरूप में दिखता है । किन्तु वह पर्वत के भार से टूट नहीं जाता, और समुद्र से जैसे भीगता भी नहीं, वैसे उसका अंतःकरण प्रसन्नता से होता है । और ऐसी आत्मा की दिव्य भाववाली चेतनाशक्ति से भरपूर प्रसन्नता आती है, तब हृदय भी समुद्र जैसा हो जाता है । उसमें नदी, पेड़, कचरा, ऐसा बहुत कुछ खिंचकर आता है, परन्तु धीरे-धीरे समुद्र सभी को किनारे फेंक कर स्वयं तो निर्मल ही रहा करता है । तथापि यह नदिओं के जल से कभी भी बढ़ता-घटता नहीं है । ऐसा ही प्रसन्नता के भाव से होने लगता है ।

प्रसन्नता का गुण प्रकट होते ही किसी के भी गुणअवगुण दोनों मन की कल्पना मात्र हैं । सदगुण को तो अपनी सात्त्विकता लाने के लिए कदर भक्तिभाव से देखते रहना है और अवगुण से हमारी चंचलता न हो, अन्यथापन सामनेवाले में आरोपित न हो ऐसी स्थिरता और समता प्रसन्नता से ही प्रकट होती है । अच्छे गुणों का उदय होता रहे और जीवन में से नकारात्मक वृत्तियों का परिवर्तन होता रहे, यह सब प्रसन्नता से जगी भावना की शक्ति से ही होता रहता है । प्रसन्नता से हानिकारक डगमगाता निश्चय कभी खड़ा नहीं रह सकता । उस भावना की फलितव्यता में से सब कुछ सभी का अनुभव से स्पष्ट दर्शन होता है । प्रसन्नता के भाव से तत्परता, परायणता, वाणी की स्पष्टता और कठोरता का लय होना, मधुरता का आना, सत्य का उद्भव होना और असत्य को पोषण न देना, ज्ञान के बारे में उत्साह, मित्र के लिए निष्कपटता, बड़ों के

प्रति आदर और हृदय में मान का भाव, गुरु के प्रति विनयभाव, चित्त में गंभीरता, गुणों के प्रति रसिकता और प्रभु के प्रति परमभक्ति – ये सभी भाव धीरे-धीरे उसमें से फलित होते जाते हम अनुभव करते हैं ।

साँप जैसे केंचुली उतारता है वैसे ही प्रसन्नचित्त सारे प्रकार के आग्रह छोड़ता जाता है । उसे बहुत सोचना नहीं होता है । वह कभी मत को पकड़कर नहीं रखता । वैसे कभी विचारों की परम्परा नहीं चलती है, 'जिसकी बुद्धि की बहुत शाखाएँ हैं, बहुत डालियाँ हैं' वैसा व्यक्ति अस्थिर है और अव्यवसायी' है । वह कभी प्रसन्नचित्त नहीं रह सकता । प्रसन्नचित्त बुद्धि की उलझन या दलीलों के मार्मिक भार से कभी नहीं लदेगा । प्रसन्नचित्त को प्रत्येक के मर्म की समझ आती जाती है । **प्रसन्नचित्त होना अर्थात् आत्मा के स्वभाव को व्यक्त करनेवाला । प्रसन्नचित्त होना अर्थात् ही आत्मा के गुण का प्रादुर्भाव होना है । प्रसन्नचित्त यानी आत्मा के प्रभाव की सतत असर । जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी कर्मों में जिस तिस की योग्यता की रीति से रहा करे ऐसी स्थिति उद्भव हो वह ।** प्रसन्नचित्त कभी आलोड़ित नहीं होता । उसे डगमगाना नहीं होता । वह सदा सर्वदा निश्चिन्त रहा करता है, क्योंकि प्रसन्नचित्तता के जीवन्त भाव में कोई कामनाएँ नहीं होती । उसकी गंभीरता में भी वह प्रसन्नचित्त ही होता है ।

जो प्रसन्नचित्त है, वही खुले हास्य का सहजता से उपयोग करता है । अभी तो इतना हँसता नहीं पर पहले जब हँसता था, तब हँसते-हँसते गिर भी पड़ता और खूब मुक्त हास्य और अट्टहास्य भी हो

जाता था । हास्य और मधुर स्मृति उसका एक प्रकार का बाह्य लक्षण भी है, प्रसन्नचित्त बहुत बातूनी भी नहीं होता या मूक भी नहीं होता । उसकी वाणी नदी के प्रवाह की तरह समान रूप से बहनेवाली, अर्थगांभीर्यवाली और कभी विनोदयुक्त भी होती है । वाणी में कहीं कटुता नहीं होती, पर स्पष्टता और स्पष्ट व्यक्तव्य भी पूरी तरह होता है । **जिसे जो कहना हो, वह उसे वास्तविक अर्थ में स्पष्ट रूप से कहेगा । उसे वह दूसरा जीव कटु या कठोर माने तो मानने देगा । उसकी वाणी में जीवित संस्कार का प्राण है । प्रसन्नचित्त के भाव की असर लगे बिना नहीं रहती ।** उसका कोई अन्य प्रकार का नशा होता है, पर वह नशा मदांध नहीं बनाता । जीवन की खुमारी बढ़ाता है । जीवन में मिलने जाते किसी भी कर्म विषयक बेदरकारी और बेखबरी या लापरवाही कभी उद्भवित नहीं होती । कितने ऐसी वृत्तिवाले **जीव** स्वयं को प्रसन्नचित्ततावाला गिनवाये तो वह पूरी मूर्खता और अज्ञान की परिसीमा है ऐसा जानना ।

प्रसन्नचित्तवाला मुमुक्षु प्रत्येक के साथ सहानुभूति और कुदरती भावना से देखेगा । प्रसन्नचित्त को सुमेल साधने में देर नहीं लगेगी, प्रसन्नचित्त को कोई भी प्रश्न हल करने के लिए बुद्धि तत्काल सहजरूप से मदद में आती है । उसे बहुत सोचने जैसा रहता नहीं है । अपने आप उसे सूझता है । वह तुरन्त सब कुछ भाँप लेता है । उसे किसी भी तरह हल करने की सूझ आ जाती है । प्रसन्नचित्त उसका मूल न खोजें या उद्देश्य न खोजे; ऐसा नहीं है, किन्तु ऐसा करने पर उसका बल अथवा तो उसकी कार्यसाधकता बहुत कम हो जाती है । इससे प्रसन्नचित्त उसके

अनुभव के भरोसे ही रहा करता है । और उस भाव की दृष्टि से स्वयं में ही मस्त रहने के कारण उसे किसी को समझने या समझाने की आवश्यकता नहीं होती । प्रसन्नचित्त को किसी बात की उलझन नहीं होती । वह तो अति सरल रहा करता है और बहा करता है । प्रत्येक क्षेत्र में संपूर्ण रूप से खुला ही होता है । **सरलता के साथ, सहजता के चैन भाव के साथ आह्लादकारक प्रचंड भावनावाली स्थिति – ऐसा भी प्रसन्नता का अर्थ कर सकते हैं ।** प्रभुकृपा से हमें ऐसी स्थिति प्राप्त हो और हमें वह हर्षित करे और फलीभूत हो यही प्रार्थना है ।

(`जीवनपाथेय`, द्वि. आ., पृ. २७ से ४१)

ता. २-४-१९४२, कराची ।

**साधक का लक्षण**

**साधक का प्रथम लक्षण प्रसन्नचित्तता है** । उस प्रसन्नचित्तता का झरना, सहजरूप से, सतत रूप से बहा करे तो ही जीवन के इधर-उधर के प्रसंगों में हम टिक सकेंगे । ध्येयनिष्ठ मार्ग से गलत ढंग से फिक जाने में मन में दुःख होना चाहिए, यह सही है और उससे दुःख एवं चिंता हो वह भी योग्य है, परन्तु उसमें से पैदा हुआ दुःख, भय, चिंता, वेदना हमारे ध्येय के प्रति मार्ग में अधिक से अधिक टोकने से प्रेरित हो आगे की ओर बढ़ाने में यदि प्रेरित ना करते हों, तो वैसा सब होना वह कोई भ्रामक दशा का परिणाम है वैसा जानना और समझना । दुःख या चिंता या वेदना या त्रास सचमुच हो तो उसका लक्षण यह है कि वह हमें वैसी की वैसी स्थिति में पड़े नहीं रहने देते । उसमें से उठने, जागने, सावधान करने और सजग रहने को हमें मथा करते हैं, तभी वैसे भयंकर दुःख, चिंता, वेदना आदि सही हैं ऐसा मानना चाहिए ।

(`जीवनमंडाण,` द्वि. आ., पृ. ६९, ७०)

**प्रसन्नचित्त कैसे रहा जाय ?**

संसार के व्यवहारवर्तन में दूसरे किसी के विचारों से, आचरण से, व्यवहार से, वचन से हमारे मन पर कोई असर हो, तब हमें सोचना है कि उसमें उस वस्तु के प्रति सच्ची समझ कौन-सी है ? और सच्ची समझ के प्रति यदि हमारी अज्ञानता लगे और यदि उन विषय का हमें दुःख हो तो वह हमारी बिलकुल पामरता कहलायेगी । हमारा वैसा होना निरीक्षण कर, अनुभव कर हमें अपने मन के भाव को फिटकारना चाहिए । वस्तु

के प्रति सही समझ का अज्ञान यदि दूसरों का लगे तो उनके अज्ञान के प्रति हमें नाराज होने का कोई कारण नहीं है । जैसे हमारा अज्ञान का एकदम नाश नहीं हो सकता, वैसे ही उनका अज्ञान भी एकदम नाश नहीं हो सकता । इससे हमें उस समय उसमें दूसरों के प्रति प्रेमार्द्र भावनावाली सहानुभूति को प्रेरित करनी पड़ेगी । इसप्रकार, यदि हम ज्ञानपूर्वक आचरण करते रहेंगे तो दूसरों के आचरण व्यवहार के साथ हमारे मन में चिढ़, ऊब, त्रास, ईर्ष्या, डाह, अरुचि आदि ऐसा कुछ अधिक उपजना संभव नहीं रहेगा ।

(`जीवनमंडाण`, द्वि. आ., पृ. ७०)

**संयुक्त कुटुंब में प्रसन्नता**

तुम्हें संसारव्यवहार में काम करना है और अनेक **जीवों** के साथ परिचय करना है और साथ मिलकर काम करना है । इससे मानसिक संघर्ष भी होगा । मुठभेड़ होने से मन तंग बनता है और तंग होने से व्यग्रता आती है और उसमें से अशांति होती है और अशांत होने पर भावना और स्मरण उड़ जाते हैं । वैसी दशा होने पर हम जीवन का धन गँवा देते हैं, परन्तु उसका भान भाग्य से ही किसी **जीव** को होता है । **इसीलिए प्रसंग या कर्म या सभी के साथ में हम हो सके उतनी शांति और तटस्थता लाना सीखें और सभी के साथ हृदय का सद्भाव, प्रेम और मानसिक उदारता रखने, यदि जीतेजागते ज्ञानपूर्वक का प्रयास किया करें तो हमें उसमें से बहुत सारा सीखने को मिलेगा । अपने आपको उसमें खूब भोग देना पड़ेगा, पर वह भोग देना ही यज्ञ है, वही**

**तपस्या है और तप है।** यदि ऐसे घिस जाने में हृदय में हृदय की प्रेमभक्ति की शुद्ध भावना झिलमिलाती रहे तो जीवन तो आभा की तरह उत्कृष्ट हो जायेगा।

('जीवनमंडाण', द्वि. आ., पृ. १०४, १०५)

**मन में शांति कैसे रहे ?**

सतत प्रसन्नचित्तता रहे तो ही मन एकाग्र और भक्तिवाला रह सकता है। और मन प्रसन्नचित्त हो तभी मन में शांति रह सकती है।

'प्रसन्नचित्त का सब सरल सरल बहे।' ऐसा, एक कवि ने लिखा है, यह बिलकुल सत्य हकीकत है। इसलिए जैसा हो सके प्रयत्न करते हुए हृदय के उमंग को प्रकट कर प्रसन्नचित्त रहा जाय वैसा करें।

('जीवनमंडाण', द्वि. आ., पृ. १३६)

**मुठभेड़ टालो**

किसी के साथ मुठभेड़ हो जाय उसका अर्थ यह है कि हमारा मन अभी मुठभेड़ को स्पर्श कर सकता है। ऐसा मानसशास्त्र का विधान है। हमारे मन में अनेक प्रकार की पसंद और नापसंद होती हैं और उसी कारण से तथा अनेक प्रकार की मन में दुनिया भरी होती है और अलग-अलग **जीवों** के बारे में अलग-अलग प्रकार की पूर्वग्रंथियाँ मन में भरी होती हैं। इन सब कारणों के द्वारा मन में मुठभेड़ होती है। इससे, हमें तो कहीं किसी से मुठभेड़ ना हो, उस तरह मन को विकसित करना है और इस तरह सदा जागृत रहा करना है। खूब नामस्मरण किया करना।

('जीवनमंडाण', द्वि. आ., पृ. १४१)

**पाप का इकरार**

हमारे में दुर्गुण हों, उन्हें निःसंकोच हो जाहिर में कबूल करने की ताकत होनी चाहिए । कबूल करने से कुछ अंशों में हम उस दुर्गुण से अलग हैं और उसके प्रति हमें नफरत है, विशेष कुछ नहीं तो उसके प्रति अभिरुचि तो नहीं है, इतना पर्याप्त हो तो हमारा मन उस प्रकार से उस बात में शिक्षित होता है । **जो कुछ भी हो उसे कबूल करने की रीति से और सहृदयतापूर्वक सरलता से, स्पष्ट रूप से इकरार करके साफ़–साफ़ कहना यह आत्मनिवेदन का एक प्रकार है । साधना की जो अनेक शर्ते हैं, उनमें से वह भी एक अनिवार्य शर्त है । पाप या दुर्गुण का इकरार करने से हमारा हृदय हलका होता है, मन शांति का अनुभव करता है और प्रसन्नचित्त होता है ।**

('जीवनमंडाण', द्वि. आ., पृ. १५०, १५१)

**शांति और प्रसन्नता**

किसी भी परिस्थिति में शांति और प्रसन्नता बनाये रखनी ही है..... शांति और प्रसन्नता यदि नहीं टिका पाये, तो हम से कहीं कुछ होनेवाला नहीं है, यह निश्चित जानना । प्रसन्नचित्तता यह तो साधना का प्रथम लक्षण है । शांति और प्रसन्नता ये उसके प्रवेशद्वार भी माने जा सकते हैं ।

('जीवनदर्शन', नौंवी आ., पृ. २०५)

**बस लहर में रहो**

हमें किसी प्रकार से तंग नहीं होना है । तंग होने पर हमें कोई सा

भी उपाय करके दुबारा लहर में आ जाना है । लहर के बिना कोई काम हमें हल नहीं करना है । हमें तो ऐसा लगता है और दिल में उसके लिए कुछ-कुछ होता है ! – कि बस, हम तो कोई पार बिना के, जिसकी कोई अवधि नहीं है, जो कुछ भी समझ में नहीं आता, जो कल्पना से भी अतीत है, मात्र जो अनुभव में ही आ सकता है, और वह हृदय में ही उस आनंद की थोड़ी बहुत लहर में ही मस्त रूप से रहा करें ! 'सब अपनेआप हल हुआ करेगा' ऐसा भगवान पर भरोसा रखें, और बस उसके भरोसे रहकर उसे ही साक्षी रखकर उसका ही स्मरण करके सब कुछ किया करें और उसे ही सब समर्पित किया करें । ऐसा होने पर कुछ भी टेढ़ा हम से नहीं होगा, जो कुछ भी करें उसे हम 'नीचे जीव से' करना है ।

अपने कार्य में हमें सभी को साथ लेना है । सभी की सहानुभूति लें । मुख्य-मुख्य और जो बतलाने की हरकत ना हो वैसे सभी मुख्य काम हम सभी को कहें । सभी की सलाह लें और उन्हें वह उन्हीं का काम है ऐसा लगने दें, तभी सभी हमारे काम में रस लेने लगेंगे । सभी के रस लेने से हमारा काम कितने ही अंशों में हलका होगा । ऐसा लिखने से हमारे वर्तन में कठिनाई पड़े ऐसा लगे तो हम वह ना करें । जिस समय जो योग्य लगे वह हम ही कर्ताहर्ता हैं ऐसा मानकर (अलबत्ता, प्रभु कराते हैं तब) आत्म-विश्वास से आचरण करें, कहीं भी हमें डाँवाडोल होना नहीं नहीं है । 'हमारी साधना का वेग बढ़ाने के लिए यह मौका मिला है, ऐसा ख्याल हमें कभी भूलना नहीं है । उसे बिसराने के लिए बहुत कुछ होगा, परन्तु उसके अधीन हमें नहीं होना है । हम से जो हो सके सब करके प्रभु

की कृपा और मदद माँगते रहना है । यदि वैसा कर सकेंगे तो हमारी नाव वह सीधी चलायेगा ही, ऐसा विश्वास रखें ।

(`जीवनपगथी`, तीसरी आ. पृ. ११२)

**साधना की नींव**

खूब-खूब आनंद में रहना । हमारे अनेक कार्यों के दौरान और अंत में यदि हमारा चित्त प्रसन्न ना रहे तो हमारी साधना की नींव कमजोर हो जायेगी । भगवान तो आनंदस्वरूप हैं । इससे उसे भजनेवाले को आनंद आना और रहना चाहिए । और **प्रसन्नता अर्थात् स्थिर आनंद की स्थिति ।** इससे प्रसन्नता दिल में रहा करे यह साधक को खास देखना है । ऐसा होगा तभी हमारा स्वभाव अधिक से अधिक सरल बनता जायेगा और साधना भी सहजता से - कष्ट का भाव आये बिना या संयोगों के दबाव के वश हुए बिना हो जायेगी, अपने आप हुआ करेगी ।

(`जीवनपगथी`, तीसरी आ. पृ. २०७)

**थिरकता हुआ आनंद होना चाहिए**

जीवन की साधना में उदासीनता, गमगीनी को कहीं स्थान नहीं है । यदि थिरकनेवाली मस्ती और बालक के जैसा हलनचलन तथा गहरा उत्कट प्रेमभाव हमारे में ना रहता हो तो हम कहीं अटक जाते हैं या आलसी हो जाते हैं ऐसा मानें । इससे जहाँ रहते हो या जहाँ-जहाँ जाएँ वहाँ-वहाँ वातावरण को सतेज बनाये और उस वातावरण में से कुछ भी प्राप्त न करे तब भी उसके साथ असहकार तो संभव नहीं हो सकता ।

(`जीवनमंथन`, द्वि. आ., पृ. २८)

**प्रसन्नता और उदासीनता**

प्रभु के साक्षात्कार की अधीरता के कारण हम में उदासीनता रहे, वह भले ही योग्य हो, पर इस उदासीनता में जो प्रेम की झलक रहनी चाहिए, वह यदि जीवन में ना आये, तो ऐसा जीवन कभी टिक नहीं सकता । जैसे ठंड और धूप के अतिशय सेवन से बड़े-बड़े पत्थरों के भी चूरे-चूरे हो जाते हैं, वैसा हमारा भी होता है । सच्चे प्रकार की उदासीनता में तो प्रेम की उत्तम और बलवान भावना रही है । यदि वह प्रेम व्यक्त न हो तो वह प्रेम हम में नहीं है वैसा गिना जायेगा, और यदि प्रेम है तो वह व्यक्त होता है । **प्रसन्नचित्त होना और रहना यह तो साधना का एक मुख्य अंग है, लक्षण है।**

(`जीवनमंथन`, द्वि. आ., पृ. ३२)

**सुमेल तो रहना ही चाहिए**

यदि दोनों का ऐसी भावना में मेल न खाता हो तो फिर दोनों को कैसे बर्ताव करना है, इसका हल तुम दोनों को मिलकर सोच लेना है, परन्तु किसी दिन क्लेश, कलह या संताप खड़ा नहीं रहना चाहिए । सदा सर्वदा आनंदी, सरल चित्त और प्रसन्न मुख रहना चाहिए । वातावरण में उल्लास, उत्साह, प्रेम, मार्दवता, सरलता, सौम्यता, परस्परता, सुमेलभाव रहा करे, यह हमें देखना है । मैं तो इतना ही कह सकता हूँ । अधिक तो क्या लिखूँ ?

(`जीवनमंथन`, द्वि. आ., पृ. ५७, ५८)

**प्रसन्नाचित्त ही रहें।**

साधक को सब कुछ करते-करते शांत और प्रसन्न तो रहना

चाहिए । चाहे कोई भी कर्म हो, कैसा भी मथना होता हो, कैसी भी मुठभेड़ हुई हो, प्रत्येक में उसकी शांति और प्रसन्नता की मात्रा बढ़ती जानी चाहिए । तभी अपने जीवनआदर्श तक पहुँचने के प्रचंड पुरुषार्थ में वह टिकनेवाला है, तभी उसमें जोश प्रकट होता रहेगा । साधक का मुख्य आवश्यक गुण तो प्रसन्नता का है । इससे कुछ भी हुआ करता हो, फिर भी वह प्रसन्नचित्त रहा ही करे । जहाँ उसमें (प्रसन्नचित्तता में) खिंचाव या टूटन होती अनुभव हो या 'हमारा भाव कहीं मंद पड़ा हो', ऐसा समझ में आये तो चेत जाना चाहिए । प्रसन्नचित्त की मात्रा के माप से हमें बहुत-बहुत सूझ आती है । **संस्कृत में 'प्रसन्न' का अर्थ निर्मल है । यह अति अर्थसूचक है ।**

('जीवनमंथन', द्वि. आ., पृ. १३९)

**साधना की सच्ची खूबी**

साधक को साधना का प्रत्येक गुण जीवन में मापदर्शक बनता जाता है । वह मात्र उसकी मर्यादा में बंधकर पड़ा नहीं रह सकता, पर सदा विस्तार प्राप्त करता रहता है । इसी कारण से साधक को जीवन में आत्मविश्वास, श्रद्धा, निष्ठा बढ़ते रहने पर प्रत्यक्ष अनुभव होता जाता है । साधना की सच्ची खूबी तो वहाँ है कि वह अपनी खूबियों और रहस्य साधक को बताया करेगी, क्योंकि खुद स्वयंस्फूर्ति में से जन्मी है । ऐसी स्वयंस्फूर्ति प्रसन्नचित्तता में से आती है । इससे साधक को जागृति रखते हुए वहाँ पुरुषार्थ करते रहना है ।

('जीवनमंथन', द्वि. आ., पृ. १३९)

**मुठभेड़ के प्रति साधक का भाव**

किसी के साथ मुठभेड़ हो, उससे हमारा सुख-चैन टूटना नहीं चाहिए । मुठभेड़ जान-बूझकर खड़ी नहीं करनी । हम उसमें कारणभूत ना बनें । सहजता से किसी प्रसंग से वैसा हो, तो हम अधिक से अधिक शांत और प्रसन्नचित्त ज्ञानपूर्वक रहें । शांति, प्रसन्नता और समता यदि बनी हुई हो - थोड़ी बहुत भी हो - तो मुठभेड़ का हार्द पा सकते हैं । मुठभेड़ को भी नकारे बिना काम चलनेवाला नहीं है । उसमें सहर्ष भाग लेकर शांति, प्रसन्नता से उसे स्वीकार करने का रखें । मुठभेड़ शिक्षा के लिए है ।

('जीवनमंथन', द्वि. आ., पृ. १४१, १४२)

**सदा ही प्रसन्नता**

जिसका हृदय सदा ही अवरित प्रसन्न है, उस पर शुभ संस्कार पड़ने से प्राप्त होनेवाले प्रत्येक प्रसंग में आनंद को अनुभव करने की मन को सतत आदत होती है । फिर उसे कोई भी वस्तु, प्रसंग, घटना अरुचिकर नहीं लगते । जिस-तिस में आनंद, रसज्ञता और माधुर्य को अनुभव करने का ज्ञानभक्तिपूर्वक का अभ्यास पड़ने से मन को शांति मिलती है, प्रसन्नता आती है तथा उसकी तेजस्विता और शक्ति और बढ़ती है ।

('जीवनमंथन', द्वि. आ., पृ. ३४५)

**प्रसन्नता अर्थात् प्रभु की समीपता**

हमारी प्रार्थना का स्वर दिल में मधुर लगे, तब भाव सविशेष है ऐसा समझें । अत्यन्त कठोर लगे, तब मन का ठिकाना नहीं है अथवा तो

कुछ अकुलाहट है ऐसा जानें । मन में खूब प्रसन्नता हो, तभी सब कुछ हमें अच्छा लगता है ।

(`जीवनसोपान`, द्वि. आ., पृ. ३१, ३२)

**प्रसन्नता के लाभ**

सदा ही आनंद में रहें । प्रसन्नचित्त रहने के अनेक लाभ हैं । जो **जीव** सतत प्रसन्न रहा करता है, उसकी कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय अधिक सूक्ष्म और सतेज बनती हैं । उसके ज्ञानतंतु आघात-प्रत्याघात को सहन कर सकें, ऐसे बनते हैं । मन अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करते अटक तो नहीं जाता, परन्तु अवश्य स्थिर बनता है । उसकी डगमगाहट कम होती है, अधिक रचनात्मक बनता है । बुद्धि सम बनती है । जीवन के सही राह सम्बन्धी दृष्टि, सृष्टि अधिक सतेज बनती है । प्राण के प्राकृतिक धर्म आशा, इच्छा, कामना, तृष्णा, लोलुपता, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर इत्यादि में भी फर्क पड़ने लगता है । और उसके अहम् के प्रकार में भी अलग दिशा का भाव आने लगता है । सतत आनंद में रहा करने से जीवन में मिलते अनेक टेढ़े-मेढ़े और खड़े प्रसंगों से **जीव** विचलित नहीं होता । उसका शांत चित्त से सामना भी कर सकता है, उसके तारतम्य को बहुत अच्छी तरह से ग्रहण कर सकता है और समता एवं ताटस्थ्य ऐसे आनंद से टहलते **जीव** में अधिक से अधिक जीवंत बनते जाते हैं । जीवन को समझने की ताकत उनमें से जन्म लेती है ।

(`जीवनसोपान`, द्वि. आ., पृ. ८८)

**प्रसंग में से प्रसन्नता प्राप्त करो**

मुझे किसी के लिए निराशा नहीं होती । आशा रहा करती है, क्योंकि मनुष्य में चेतन तो रहा ही है । मात्र उसकी दिशा – मुख बदलना होता है । जब मुख बदल जाता है, तब सब कुछ बदल गया लगता है । किसी से ऊबना नहीं है । व्याकुलता हो, तब हम संताप न करें । शांत मन से उसे इनकार करें । मन को समझाये कि ऐसा करने से उलटा अशांति, उद्वेग, क्लेश आदि बढ़ेंगे और इससे दृष्टि निर्मल नहीं रह सकेगी । उलटा औंधा ही लगा करेगा । इससे वैसा लगा करने से तो मन को त्रास, संताप अधिक हुआ करेगा । तो हमें करना क्या है ? शांति, प्रसन्नता आदि प्रकट हुआ करे वैसा भाव रखना है कि फिर जैसे-तैसे खिंचा करना है ? ऐसा बार-बार मन को हृदय द्वारा समझाया करें । ऐसा प्रसंग आने पर मन को ऊँचे से ऊँचा हमें उसकी कृपा से रखा करना है । बाकी तो संसार के कीचड़ में ऐसे रौंदे जायेंगे कि न पूछो बात । तो फिर मन को उसमें से वापस खींचे; वह **जीव** के लिए महा भारी प्रयत्न से भी हो सकनेवाला नहीं है । मन को – अपने निम्न मन को – तो उसमें ही लीन रहने की बहुत समय से वैसी परंपरा पड़ी है, उसीमें ही वह रहा करेगा ? परन्तु हमारा वह मार्ग नहीं है । इसलिए प्रत्येक प्रसंग में से जो **जीव** जीवनविकास के लिए कुछ-कुछ प्रत्यक्ष अनुभव पर से सीखा करता है, उसे प्रसंग में से प्रसन्नता, शांति मिला करती है, ऐसा प्रभुकृपा से इस **जीव** का अनुभव है । इसलिए, प्रसंग वह गुरु है, ऐसा सूत्र इस जीवन के साररूप में जिसे-तिसे कहा करने का होता है ।

(`जीवनसोपान`, द्वि. आ., पृ. २८४, २८५)

**तप से शुद्धि**

अकुला जाने से साधक का काम उलटा बिगड़ता है । जो भी कुछ सहन करना पड़े, वह तप की भावना रख-रखके प्रसन्नता से जीवन के लिए सहना हो । ऐसा सहन करने से कभी त्रास, ऊब जन्म नहीं ले सकते । उलटा **जीव** अधिक उदात्त, अधिक चेतनवाला होकर प्रकट हुआ करता है ।

('जीवनसोपान', द्वि. आ., पृ.२८७)

**प्रसन्नता का मूल**

हमें किसी प्रकार का दुःख नहीं होना चाहिए । अलबत्ता, हमें अपना ख्याल रहना चाहिए । और उसके लिए जागृति रखकर सतत पुरुषार्थ किया करना चाहिए । जहाँ तक ध्येय प्राप्त न करें, वहाँ तक चैन से नहीं बैठ सकते ऐसी मन की स्थिति, वृत्ति, भाव और छटपटाहट होनी चाहिए । पर उसके साथ-साथ प्रसन्नता भी रहनी चाहिए । प्रसन्नता का मूल प्रेम, श्रद्धा, आशा और धैर्य में निहित है । बैलगाड़ी के पहिये में एरंडी के तेल की बत्ती की तरह प्रेम सरलता, उमंग और उत्साह हमारे में सिंचा करता है । सतत पुरुषार्थ द्वारा ध्येय के पास ले जाने को प्रेरित करता है । आशा हमें अडिग और दृढ़ बनाती है और सदा चेतना भरती है । जीत हमारी ही है, क्योंकि हमें अपने कार्य में विश्वास है । विश्वास इससे उपजता है कि कार्य सच्चा ही है, इसके द्वारा ही हमारा जीवन बहनेवाला है, यह हमारे जीवन का ही सच्चा अवलंबन है । प्रत्येक कार्य को पकड़ लेने के लिए ही नहीं, परन्तु उस पर सतत चिपके रहने के लिए धैर्य की

भी इतनी ही आवश्यकता है । वे सभी यदि हमारी साधना में रहा करते हों तो सच्चे प्रकार की प्रसन्नता हमारे में रहती है ।

(`जीवनपगरण`, द्वि. आ., पृ.१४३, १४४)

**आनंद कब टिकेगा ?**

प्रसन्नचित्त रहे बिना या हुए बिना आनंद टिकता नहीं है । सभी प्रकार के उद्वेगों का शमन करे बिना प्रसन्नचित्त नहीं रह सकते हैं । उद्वेग तो तभी शांत होते हैं, जब हमारा पूरा **जीव** प्रकार का दृष्टिबिन्दु संपूर्ण रूप से बदल जाय अथवा बदल जाने के एकनिष्ठापूर्वक के सत् प्रयत्न में हो । हम अपने आप में ही अधिक स्थिर कैसे हो सकते हैं, अधिक आनंदमय कैसे रह सकते हैं, उस प्रकार का चंक्रमण पलपल यदि दिल में जीवित रमा रहता हो और जीवनविकास के कर्म के प्रति की जिज्ञासा में प्रतिदिन तेजस्विता प्रकट हुआ करती हो तो जीवप्रकार का घमासान शांत हो सकता है । सत् प्रयत्न से और उसके प्रति प्रयाण में से आत्मसंतोष प्रकट होता है ।

(`जीवनसंशोधन`, प्र. आ., पृ. १२७, १२८)

**उदासीनता को टालो**

सदा आनंद में रहा करो । किसी भी प्रकार की उदासीनता को हमें मन में नहीं बैठने देना है, तो घर कर देने की तो कहाँ से हो ? हमें स्वयं को प्रसन्न रखकर वातावरण को प्रसन्न रखा करना है । उसमें से वापस हमें प्रसन्नता और शांति का बल मिलेगा ।

(`जीवनसंशोधन`, प्र. आ., पृ. ३०९)

सदा प्रसन्नचित्त रहा करने में ही आनंद है । जो कोई प्रसन्नचित्त रहता है, उसे कहीं कोई आवरण घेर नहीं सकता ।

(अनुष्टुप)

**प्रसन्नचित्त का सर्व सुगम सुगम बहे,**

**प्रसन्नचित्त को ग्लानि क्यों भला व्याप्त कर सके ।**

('जीवनप्रेरणा', द्वि. आ., पृ.३२, ३३)

गंभीर होने पर भी हमें प्रसन्नचित्त तो रहना ही चाहिए । हमारा हालचाल एरंडी तेल पिये मुख जैसा नहीं रहना चाहिए ।

('जीवनपगरण', द्वि. आ., पृ. ६३)

सभी प्रकार की परिस्थितियों में संपूर्णरूप से ज्ञानात्मक दशा प्रकटाया करनी हो तो उपयोग के ज्ञान-चेतना के साथ निराग्रहीपन रखें तो सदा सुख, निश्चिंतता, प्रसन्नचित्तता, समता, शांति आदि उत्पन्न कर हुआ करेंगे ।

('श्रीमोटा के साथ वार्तालाप', द्वि. आ., पृ. १०३)

**(अनुष्टुप)**

प्रसन्नता की मात्रा जब कम होती दिखे,
चेतकर खोजे तब 'ऐसा क्यों हुआ होगा!'
पिरोये न वहाँ जाये, वृत्ति का मूल खोज,
उससे होकर दूर स्वयं, वहाँ प्रसन्न फिर हों ।

('जीवनमंथन', द्वि. आ., पृ. २८४)

।। हरि:ॐ ।।

## ।। आरती ।।

ॐ शरण चरण लीजिए, प्रभु शरण चरण लीजिए,
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए... ॐ शरण
मन- वाणी के भाव, आचरण में उतरें, प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें..... ॐ शरणचरण.
सभी स्वजनों के साथ, दिल में सदभाव जगे, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े..... ॐ शरणचरण.
हीन प्रकार की वृत्ति, ऊर्ध्व गमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें(२) चरणशरण पाने..... ॐ शरणचरण.
मन के सकल विचार, प्राणयुक्त वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो..... ॐ शरण.
जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दिखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें.....ॐ शरणचरण.
दिल में कुछ भरा हो, उससे उलटा, प्रभु (२)
मेरे द्वारा कभी न हो (२) ऐसी मति देना..... ॐ शरणचरण.
जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें..... ॐ शरण.
मन, मति, प्राण, प्रभु तुम्हारे भाव से पिघले, प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति की (२) लहरें उछलें..... ॐ शरणचरण.

**– श्रीमोटा**

# ।। हरिः ॐ ।।

## " मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ "

(`जीवनदर्शन`, दसवाँ संस्करण, पृ. ३८२) – **मोटा**

।। हरिः ॐ ।।

प्रश्नः 'मोटा, आपने सारी बातें बैठे-बैठे तो की, पर यह आपकी प्रसन्नता और हमारा रोट – इन दोनों का कोई मेल खाता है कि फिर ऐसे ही आप भाषण दिया करते हो ?'

उत्तरः उसका मेल खाता है । प्रसन्नतावाला व्यक्ति किसी भी काल में आलसी नहीं होता है । वह हमेशा उद्योगी, उद्यमी, सावधानीवाला, धीरजवाला रहेगा । वह व्यक्ति भले गरीब व्यक्ति होगा, पर खाने के लिए उद्यम करेगा । जितना मिलेगा उसमें संतोष मानेगा । एक रोट खाने के लिए चाहिए और आधा रोट मिले तो भी उसे आधा रोट खाकर संतोष होगा । 'उसका घर कैसे चलेगा ?' यह तो तुम अपनी बुद्धि से सोचते हो । उसकी बुद्धि से सोचोगे तो वह बहुत सुंदर ढंग से चलता होता है । किसी भी दिन उस बारे में उसके मन में प्रश्न नहीं उठता । उसे कमाने में, रोट पाने में, कपड़ा-लत्ता प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है । इस प्रकार की मेहनत किया करता है । उसमें से उसे यह सब मिला करता है । उसमें मीनमेख प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है । थोड़ी भी नहीं । इतना ही नहीं, पर व्यवहार में खर्च तो चाहिए । तब भी उसका व्यवहार सँभला है । 'अ, ब, क, ड का व्यवहार प्रत्यक्ष बतलाओ तो हम मानेंगे । आप तो थोप रहे हो ।' ऐसा कोई कहे तो उसे उदाहरण अपने आपका ही दूँगा ।